International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(5): 03-05

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(5): 03-05
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 02-07-2018
Accepted: 03-08-2018

कु० कमलेश
शोधच्छात्रा, संस्कृत–विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

Correspondence
कु० कमलेश
शोधच्छात्रा, संस्कृत–विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

हितोपदेश में पशु–पक्षियों के व्यवहार के माध्यम से धर्म तथा उपदेश

कु० कमलेश

सारांश
संस्कृत साहित्य में हितोपदेश के रचयिता नारायण पण्डित को महान् ख्याति प्राप्त है। इनकी हितोपदेश नाम की एक ही कृति प्राप्त होती है। नारायण पण्डित द्वारा विरचित हितोपदेश को कथा साहित्य के अन्तर्गत रखा गया है। इसमें हितोपदेशकार ने नीतिकथाओं और शिक्षाप्रद श्लोकों का वर्णन किया है। नारायण पण्डित ने इस ग्रन्थ में प्रत्येक शिक्षा का उपदेश पशु–पक्षियों के माध्यम से दिया है। यह भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में कथाग्रन्थ के रूप में मान्य है। हितोपदेश के अनुशीलन से नीति शास्त्र का ज्ञान आसानी से हो जाता है। नारायण पण्डित जन्म से ही प्रखर बुद्धि वाले थे। इन्होंने हितोपदेश में अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा को बिखेरा है। इन्होंने अपने शिरामाणि ग्रन्थ में पशु–पक्षियों आदि को पात्र बनाकर धर्म तथा उपदेश का ज्ञान दिया है।

कुट शब्दः धर्म, उपदेश

प्रस्तावना
लौकिक साहित्य में जिस प्रकार से पशु–पक्षियों, जीव–जन्तुओं आदि के माध्यम से व्यवहारिक ज्ञान का उपदेश दिया गया है उसी प्रकार वैदिक साहित्य में भी पशु–पक्षियों तथा जीव–जन्तुओं आदि के माध्यम से व्यवहारिक ज्ञान के उपदेश का वर्णन प्राप्त होता है।[1]
ऋग्वेद में एक वृक्ष पर बैठे हुए दो पक्षियों के माध्यम से आत्म और परमात्म तत्व का ज्ञान दिया गया है। इसमें कहा गया है कि–

द्वा सुपर्णा सुयजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।[2]

विवेचनीय ग्रन्थ हितोप्रदेश में पशु–पक्षियों के माध्यम से संवाद रूप में धर्म तथा उपदेश का ज्ञान दिया गया है।

धर्म
धर्म शब्द की व्युत्पत्ति धरति लोकान् ध्रियते पुण्यात्मभिः इति वा धृ + मन् धातु से मानी गई है। वह कर्म जिसको करने से मनुष्य का इस लोक में अभ्युदय हो और परलोक में मोक्ष की प्राप्ति हो।[3] संस्कृत हिन्दी कोशकार के अनुसार भी धर्म शब्द की व्युत्पत्ति इसी प्रकार से ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोक वा धृ + मन् धातु से बतायी गयी है, जिसका अर्थ कर्त्तव्य, जाति, सम्प्रदाय के प्रचलित आचार का पालन करना है। धर्म को मानव अस्तित्व के चार पुरुषार्थो में से एक माना गया है।[4] हिन्दी कोशकार ने धर्म शब्द की व्युत्पत्ति न बतलाकर धर्म का अर्थ बताया है। इन्होंने धर्म शब्द का अर्थ दीन, कल्याणकारी धर्म, दानपुण्य अथ्वा सत्कर्म करना बताया है।[5]
धर्म का परिचय भी हमारे दार्शनिकों, चिन्तनों और संस्कृत कवियों ने अपने–अपने समय के विचार और चिन्तन के परिणामस्वरूप भिन्न–भिन्न रूप से दिया है। धर्म में नैतिक सदाचार का बड़ा महत्व है तथा धर्म को जीवन का सबसे उत्तम रस बताया गया है जिस प्रकार समुद्र का एकमात्र रस लवण रस है

1 संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ० 572
2 ऋग्वेद 1.164.20
3 संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ० 564
4 संस्कृत–हिन्दी कोश, पृ० 489
5 हिन्दी पर्यायवाची कोश, पृ० 303

उसी प्रकार धर्म का एकमात्र रस विमुक्ति रस है।[6] बुद्धविजय काव्य में भी धर्म के सन्दर्भ में वर्णन आया है कि लोक में धर्म ही श्रेष्ठ रत्न है। पूजनीय धर्म की वन्दना करने से हमेशा कल्याण होता है।[7] वैशेषिक दर्शन में भी धर्म को निःश्रेयस प्राप्ति का साधन बताया गया है।[8]

विष्णुशर्मा ने भी अपने पंचतन्त्र नामक ग्रन्थ में धर्म की महत्ता को परिभाषित करते हुए व्यवहारिक ज्ञान दिया गया है कि जिस प्रकार वृक्षों का सार उनका फलपुष्प होता है, दधि का सार धृत होता है और खली का सार होता है उसी प्रकार से मनुष्य का सार धर्म होता है। अतः कहा जा सकता है कि परोपकार करना पुण्यदायक होता है और दूसरों को कष्ट पहुँचाना पापदायक होता है। इसलिए दूसरों को कष्ट न पहुँचाते हुए मनुष्य को निरन्तर परोपकार में लीन रहना चाहिए। यही वास्वत में धर्म तत्व है।[9]

नारायण पण्ड़ित ने विष्णुशर्मा के पंचतन्त्र नामक ग्रन्थ को लक्ष्य मानकर अपने हितोपदेश नामक ग्रन्थ में धर्म के स्वरूप को परिलक्षित करते हुए कहा है कि आहार, निन्द्रा, भय और मैथुन ये सभी तो मनुष्य और पशुओं में समान है परन्तु फिर भी मनुष्यों में केवल धर्म ही अधिक है। तथा धर्महीन मनुष्य तो पशु के तुल्य है।[10] हितोपदेश में धर्म में धर्म के सन्दर्भ में अनेक कथाएँ वर्णित हैं। इसमें मुख्य कथा लघुपतनक नामक कौआ, मूषकराज हिरण्यक तथा मन्थर नामक एक धर्मशील कछुए की कहानी है।[11]

इस कथा के द्वारा धर्म की प्रशंसा करते हुए नारायण पण्डित कहते हैं कि धन तो चरणों की धूलि के समान है तथा यौवन पहाड़ की नदी के वेग समान है, आयु चंचल जल की बिन्दु के समान चपल है और जीवन फेन के समान है, इसलिए जो निर्बुद्धि स्वर्ग रूपी ताले को खोलने का प्रयास नहीं करता है वह धर्म को नष्ट करता हुआ वृद्धावस्था में शोक की अग्नि में जलता है।[12]

नारायण पण्डित द्वारा विरचित हितोपदेश में धर्म के आठ मार्ग बतलाए गए हैं यज्ञ करना, वेद पढ़ना, दान देना, तप करना, सत्य बोलना, धीरज धरना, क्षमाशील होना और लोभ न करना। वैदिक काल से यज्ञ के विषय में अनेक प्रकार के व्याख्यान उपलब्ध होते हैं। अतः यज्ञ करना मनुष्य मात्र के लिए धर्म की कहा गया है।[13]

हितोपदेशकार के अनुसार धर्म ही एकमात्र मनुष्य के साथ मरणोपरान्त भी बना रहता है अन्य सम्पूर्ण वस्तुएं नष्ट हो जाती है। अतः धर्म ही मनुष्य के परम लक्ष्य का एकमात्र साधन है।[14] हितोपदेश में धर्म के विषय में एक अन्य तथ्य उद्घाटित किया गया है। इसमें कहा गया है कि मनुष्य मात्र को सुखप्राप्ति के लिए सज्जनों के साथ मेल करना चाहिए और मृगतृष्णा के समान यह जो क्षण भंगुर संसार है इसका विचार कर मानव का कर्त्तव्य है कि वह धर्म का आचरण करे।[15] धर्म की जो परिभाषा दार्शनिक दृष्टि से कणाद इत्यादि ने की है हितोपदेश में भी उसकी पूर्ण सार्थकता दृष्टिगोचर होती है।

उपदेश

उपदेश शब्द की व्युत्पति एवं अर्थ कोश ग्रन्थों में दिया गया है। उपदेश शब्द की व्युत्पत्ति उप + दिश् + घञ् प्रत्यय करके मानी गयी है जिसका अर्थ है दीक्षागुरूमन्त्र अथवा नेक सलाह देना।[16] हिन्दी कोशकार के अनुसार उपदेश शब्द का अर्थ सीख, गुरूमंत्र, धर्मोपदेश अथवा प्रवचन देना है।[17] संस्कृत हिन्दी कोश में भी उपदेश शब्द की व्युत्पत्ति उप + दिश् + घय प्रत्यय से मानी गयी है जिसका अर्थ शिक्षण, अध्ययन अथवा निर्देशन करना है।[18] एक अन्य कोश में भी उपदेश शब्द का अर्थ उपदेश करने वाला, सीख देने वाला तथा घुम–घुमाकर प्रचार करने वाला कहा गया है।[19] उपदेश शब्द की परिभाषा हमारे दार्शनिकों, चिन्तकों अथवा साहित्य शास्त्रियों ने अपने–अपने समय के विचार और चिन्तन के परिणामस्वरूप भिन्न–भिन्न रूपों में दी है।

उपनिषद् आदियों में उपदेश का विशेष महत्व प्रतिपादित किया गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवलक्य–मैत्रेयी संवाद में भी याज्ञवलक्य मैत्रेयी को उपदेश देते हुए दिखलाई पड़ते हैं।

इस प्रकार विविध प्रकार के सम्वादों में उपदेशों का ही वर्णन प्राप्त होता है। सामान्यतः उपदेश शब्द जितना अधिक लघु दृष्टिगोचर ज्ञात होता है उसका अर्थ उतना ही विशाल है। व्याकरण शास्त्र के अनुसार व्याकरण के प्रथम आचार्य पाणिनि आदि के उच्चारण को उपदेश कहते हैं।[20]

साहित्य में उपदेश तीन प्रकार के माने गये हैं। 1. प्रभुतुल्य 2. मित्रतुल्य तथा 3. कान्तातुल्य। अभिप्राय यह है कि किसी कार्य को करने के लिए प्रायः प्रभुतुल्य, मित्रतुल्य तथा कान्तातुल्य उपदेशों से बाह्य प्ररेणा मिला करती है। वेदशास्त्रों का उपदेश राजा या स्वामी की आज्ञा के समान है, उसमें शब्द अर्थात् शासन की प्रधानता है।[21]

पुराणइतिहासादि का उपदेश मित्र के तुल्य है। जिस प्रकार कोई मित्र भली– भान्ति प्रयोजन को समझाकर किसी कार्य के लिए प्रेरणा देता है इसी प्रकार पुराणइतिहासादि भी है। तृतीय उपदेश कान्ता–तुल्य होता है।[22] विष्णुशर्मा ने अपने पंचतन्त्र नामक ग्रन्थ में मित्रतुल्य उपदेश को परिभाषित करते हुए व्यवहारिक ज्ञान दिया है। इसमें शिक्षा दी गयी है कि मनुष्य को सदा हितकर मित्र बनाने चाहिए, क्योंकि मनुष्यसाधन हीन होने पर भी केवल मित्रता के बल पर ही सुखी हो सकते हैं। जिस प्रकार कौआ, कछुआ, हिरण आदि साधनहीन होने पर भी मित्रता के बल पर ही सुखी रहे।[23]

मित्र सम्प्राप्ति में शिक्षा दी गयी है कि पुरूष को अभिन्न हृदय मित्र में जैसा विश्वास होता है वैसा विश्वास न तो माता में होता है, न स्त्री में, न भाई में और न ही पुत्र में देखने को मिलता है।[24] नारायण पण्डित ने भी हितोपदेश में तीनों ही प्रकार के उपदेशों का वर्णन किया है परन्तु मुख्य रूप से इन्होंने मित्रतुल्य उपदेश के द्वारा व्यवहारिक ज्ञान को सार्थकता प्रदान करते हुए भिन्न– भिन्न कथाओं के माध्यम से मित्रतुल्य उपदेश को अभिव्यक्त किया है। मित्रलाभ में चित्रग्रीव नामक कबूतरों के राजा अथवा हिरण्यक नामक मुषकराज की कथा मुख्य रूप से मित्रतुल्य उपदेश को प्रदर्शित करती है। इस कहानी में मित्रतुल्य उपदेश दिया गया है, क्योकि इसमें चित्रग्रीव नामक कबूतरों ने अपने सम्पूर्ण काक

---

6 बौद्ध संघ का स्वरूप एवं विकास, पृ० 17

7 श्रेष्ठं धर्मो जने रत्नं स्वस्ति सत्येन तेन वः। बुद्धविजय काव्य, 62/10

8 यतोऽभ्युदयः निः श्रेयससिद्धिः स एव धर्मः। वैशेषिक दर्शन, पृ० 2

9 श्रेयः पुष्पफलं वृक्षादध्नः श्रेयो घृतं स्मृतम्।
श्रेयस्तैलञ्च पिण्याकाच्छ्रेयान् धर्मस्तु मानुषात्।। पंचतंत्र, काकोलूकीय, श्लोक 98

10 आहार– निन्द्रा–भय– मैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना : पशुभिः समानाः।। हितापदेश, प्रस्ताविक भाग, श्लोक 25

11 हितोपदेश, मित्रलाभ, गद्य भाग, पृ० 46–63

12 अर्थाः पादरजोपमा गिरिनदीवेगोपमं यौवन –
मायुष्यं जललोलबिन्दुचपलं फेनोपमं जीवितम्।
धर्म यो न करोति निन्दितमति : स्वर्गार्गलोद्घाटनं
पश्चात्तापयुतो जरापरिगतः शोकाग्निना दह्यते।। हितोपदेश, श्लोक 155

13 इज्याऽधययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्यापुविधः स्मृतः।। हितोपदेश, श्लोक 8

14 एक, एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति।। वही, श्लोक 65

15 मृगतृष्णासमं वीक्ष्य संसारं क्षणभङ्गरम्।
सज्जनैः संगतं कुर्याद्धर्माय च सुखाय च।। वही, संधि, श्लोक 129

16 संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ० 247

17 हिन्दी पर्यायवाची कोश, पृ ० 88

18 संस्कृत–हिन्दी कोश, पृ० 205

19 ज्ञान शब्द कोश, पृ० 313

20 लधुसिद्धान्तकौमुदी, संज्ञाप्रकरण, पृ० 7

21 काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास, पृ० 9

22 काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास, पृ० 10

23 पंचतन्त्र, मित्रसम्प्राप्ति, पृ० 1–80

24 न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मजे।
विश्श्रम्भस्तादृशः पुंसा यादृङ्मित्रे निरन्तरे।। पंचतन्त्र, श्लोक 186

समुदाय के लिए मित्रवत् भाव से उपदेश दिया है।[25] इसमें शिक्षा दी गयी है कि जिस मनुष्य की मित्र के साथ बोल–चाल है, जिसका मित्र के साथ अच्छी प्रकार से रहना–सहना होता है और जिसकी मित्र के साथ गुप्त बातचीत होती है, उस मनुष्य के समान इस संसार में कोई पुण्यवान् नहीं है।[26]

एक अन्य कथा के माध्यम से भी हितोपदेशकार ने मित्रतुल्य उपदेश को परिलक्षित किया है। मृग, सुबुद्धि नामक कौवा तथा स्यार की कथा के द्वारा नारायण पण्डित ने मित्रतुल्य उपदेश को परिभाषित किया है। इसमें शिक्षा दी गयी है कि परोक्ष में कार्य नष्ट करने वाले और समक्ष में मधुर–मधुर बातें करने वाले मित्र को दूध पीकर विष उगलने वाले सर्प के समान त्याग देना चाहिए।[27] विविध प्रकार के उपदेशों में मित्रतुल्य उपदेश हितोपदेश में विशेषतः वर्णित किया गया है। क्योंकि विविध प्रकार के पशु–पक्षियों के द्वारा हितापदेश में मित्रतुल्य उपदेश को उद्घाटित करना इस ग्रन्थ का प्रमुख उद्देश्य है।[28]

हितोपदेश में पशु–पक्षियों के माध्यम से धर्म तथा उपदेश का व्यवहार ज्ञान प्रदान किया है। उपदेश शब्द जितना अधिक लघु दृष्टिकोण प्राप्त होता है, उसका अर्थ उतना ही विशाल है। प्रभुतुल्य, मित्रतुल्य तथा कान्तातुल्य उपदेशों से प्रत्येक कार्य को भली–भांति करने के लिए प्ररेणा देता है। धर्म मनुष्य का एकमात्र साधन है जो मनुष्य के साथ मरणोपरान्त भी बना रहता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को धर्म का आचरण करते रहना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद भाष्यकार : भूषण पदम, लेखक : सातवलेकर दामोदर, प्रकाशक : वसन्त श्री पाद सातवलेकर, मुद्रक : चमन ऑफसेट प्रिंटर्स, नई दिल्ली
2. काव्यप्रकाश लेखक : मम्मट, सम्पादकः शास्त्रीनिवास, व्याख्याकार : शास्त्री हरिदत्त, प्रकाशक : रतिराम शास्त्री, प्रतिष्ठान : साहित्य बाजार, सुभाष बाजार, मेरठ–2, संस्करण : प्रथम, वर्ष : 1960, मुद्रक : देवा ऑफसेट प्रिन्टर्स, मेरठ
3. पंचतन्त्र लेखक : शर्मा विष्णु, टीकाकार : विश्वनाथ व्याकरणाचार्य, प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
4. बुद्धविजय काव्य लेखक : शास्त्री शान्ति भिक्षु, प्रकाशक : केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, चोगलनसर लेह लद्दाख, प्रथम संस्करण 1988
5. लघुसिद्धान्त कौमुदी लेखक : वरदराज, व्याख्याकार : शास्त्री श्रीधरानन्द, प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास चौक, वाराणसी–।। संस्करण : षष्ठ, वर्ष : 1972
6. वैशेाषिक दर्शन लेखक : कणाद,व्याख्याकारः जीवानन्द विद्याभास्कर भट्टाचार्येण, संस्करणः1886
7. हितोपदेश लेखक : नारायण, व्याख्याकार : रामेश्वर भट्ट, प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान 38 यू०ए०, जवाहरनगर, बंगलारोड़ दिल्ली, पोस्ट बॉक्स नं० 2113
8. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास लेखक : द्विवेदी कपिल, प्रकाशक : रामनारायणलाल बेनीप्रसाद, संस्कार : चतुर्थ, वर्ष : 1971, मुद्रक : रामबाबु अग्रवाल, ज्ञानोदय प्रेस, कटरा इलाहाबाद–
9. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ लेखक : शर्मा द्वारका प्रसाद, प्रकाशक : रामनारायण लाल बेनीप्रसाद, चतुर्थ संरकरण, 1971, मुद्रक : राम बाबू अग्रवाल, ज्ञानोदय प्रेस, कटरा इलाहाबाद–2
10. संस्कृत हिन्दी कोश लेखक : आप्टे वामन शिवराम, प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण 1966
11. हिन्दी पर्यायवाची कोशलेखक : तिवारी भोलानाथ, प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन चावड़ी बाजार, दिल्ली–6, संस्करण 1994, मुद्रक : राधा प्रेस, गांधी नगर, दिल्ली
12. ज्ञान शब्द कोश लेखक वास्तव श्री मुकुन्दीलाल, प्रकाशक : ज्ञानमण्डल लिमिटेड बनारस, संस्करण : प्रथम 2011

---

[25] हितोपदेश, मित्रलाभ, पृ० 13–23

[26] यस्य मित्रेण संभाषो यस्य मित्रेण संस्थितिः।
यस्य मित्रेण संलापस्ततो नास्तीह पुण्यवान्।। वही, श्लोक 39

[27] हितोपदेश, गद्य भाग, पृ० 30–49

[28] परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्। वही, श्लोक 77